

“पुरुवा भील”

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर ‘पुष्कलावती’ नाम का देश है उसकी ‘पुण्डरीकिणी’ नगरी में एक ‘मधु’ नाम का वन है। उसमें ‘पुरुवा’ नाम का एक भीलों का राजा अपनी ‘कालिका’ नाम की स्त्री के साथ रहता था। किसी दिन दिग्भ्रम के कारण ‘श्री सागरसेन’ नाम मुनिराज को इधर उधर भ्रमण करते हुए देखकर यह भील उन्हें मारने को उद्यत हुआ उसकी स्त्री ने यह कहकर मनाकर दिया कि ‘ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो।’ वह पुरुवा उसी समय मुनि को नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शांत हो गया। मुनिराज ने उससे मद्य मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग करा दिया। मांसाहारी भील भी इन तीनों के त्याग रूप व्रत को जीवन पर्यन्त पालन कर आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु को धारण करने वाला देव हो गया कहाँ तो वह हिंसक वृद्ध भील पाप करके नरक चला जाता और कहाँ उसे गुरु का समागम मिला कि जिनसे हिंसा का त्याग करके स्वर्ग चला गया।

“मरीचि कुमार”

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड के मध्य भाग में कौशल नाम का देश है। इस देश के मध्य भाग में अयोध्या नगरी है। वहाँ आदिनाथ भगवान् के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती की अनंतमती रानी से ‘यह पुरुवा भील का जीव देव’ मरीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा भगवान् वृषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरु भक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। भगवान् तो छह महिने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। मरीचि आदि चार हजार राजाओं ने क्षुधा, तृषा आदि वेदनाओं से घबड़ाकर वन के फल आदि को स्वयं ही भक्षण करना शुरू कर दिया। उस समय उस दिगम्बर वेष में वैसा स्वच्छंद आचरण करते देख वनदेवता ने उन्हें भ्रष्ट आचरण करने से रोका। तब उन साधुओं ने अनेक वेष बना लिये। मरीचि ने सबसे प्रथम पारिव्राजक दीक्षा धारण कर ली। किसी ने वल्कल पहने, किसी ने जटायें बढ़ाई किसी ने लंगोटी लगाई। इत्यादि अनेक वेषधारी बन गये। लगभग एक वर्ष के उपवास के बाद भगवान् ऋषभदेव को आहार मिला पुनः एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद केवलज्ञान हो गया। उस समय समवसरण में सभी भ्रष्ट राजाओं ने पुनः जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और स्वर्ग मोक्ष प्राप्त किया किन्तु मरीचि कुमार ने मान कषाय के आवेश में आकर पुनः दिगम्बर दीक्षा नहीं ली। उसी मिथ्यामत का प्रचार करता रहा। उसी समय से ‘तीन सौ त्रेसठ’ मत चले हैं

“मरीचि का भवभ्रमण”

मरीचिकुमार आयु के अन्त में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर आयु वाला देव हो गया। वहाँ से आकर जटिल ब्राह्मण हुआ, पुनः पारिव्राजक बना। पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, पुनः वहाँ से पुष्पमित्त्र ब्राह्मण होकर परिव्राजक बना। पुनः सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। पुनः वहाँ से आकर अग्निसह ब्राह्मण होकर पारिव्राजक दीक्षा ले ली। पुनः मरकर देव हुआ, वहाँ से च्युत होकर अग्निमित्त्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक तापसी हुआ। पुनरपि माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर भारद्वाज ब्राह्मण होकर त्रिदण्डी साधु बन गया और पुनरपि स्वर्ग में गया। वहाँ से च्युत होकर मिथ्यात्व के निमित्त से यह मरीचि कुमार त्रस—स्थायर योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता रहा। वर्धमान चरित में मध्य के कुछ भवों का वर्णन निम्नप्रकार है— “मिथ्यात्व के पाप से यह मरीचि कुमार का जीव इतर निगोद में चला गया। आकतरु के ढाई हजार भव धारण किये सीप के अस्सी हजार भव वृक्ष के बीस हजार भव, केला वृक्ष के नब्बे हजार भव, चन्दन वृक्ष के तीन हजार भव, कनेर वृक्ष के पांच करोड़ भव, वेश्या के साठ हजार भव, शिकारी के पांच करोड़ भव, हाथी के बीस करोड़ भव, गधे के साठ करोड़ भव, कुत्ते के तीस करोड़ भव, नपुंसक के साठ लाख भव स्त्री के बीस करोड़ भव, धोबी के नौ लाख भव, घोड़े आठ करोड़ भव, बिल्ली के बीस करोड़ भव प्राप्त किये। माता के गर्भ से साठ लाख बार गिरा अर्थात् साठ लाख बार गर्भपात से मरा। राजा के पचास हजार भव प्राप्त किये। कभी सुपात्र को दान देने से भोगभूमि में भी गया। अस्सी लाख भव देव पर्याय में व्यतीत किये कितने ही भव नरक में बिताये”। वह मरीचि कुमार का जीव इस तरह असंख्यात वर्षों तक इन कुयोनियों में भ्रमण करते हुए श्रांत हो गया। कुछ पुण्य से राजगृह नगर के शांडिल्य ब्राह्मण की पारशरी पत्नी से ‘स्थावर’ नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी सम्यदर्शन से शून्य पारिव्राजक की दीक्षा लेकर अन्त में मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया।

“विश्वनंदी”

इसी मगध देश के राजगृह नगर में ‘विश्वभूति’ राजा की ‘जैनी’ नामकी रानी से यह मरीचि कुमार का जीव स्वर्ग से आकर ‘विश्वनंदी’ नाम का राजपुत्र हो गया। विश्वभूति राजा का एक विशाखभूति नाम का छोटा भाई था, उसकी लक्ष्मणा पत्नी से ‘विशाखनन्दि’ नाम का मूर्ख पुत्र हो गया। किसी दिन विश्वभूति राजा ने विरक्त होकर छोटे भाई विशाख भूति

का राज्य देकर अपने पुत्र 'विश्वनन्दि' को युवराज बना दिया और स्वयं तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षित हो गये। किसी दिन विश्वनन्दी युवराज अपने 'मनोहर' नामक उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। चाचा के पुत्र विशाखनन्द ने अपने पिता के पास जाकर उस उद्यान की याचना की। विशाखभूति ने भी युवराज विश्वनन्दी को 'विरुद्ध राजाओं को जीतने के बहाने' बाहर भेजकर पुत्र को बगीचा दे दिया। विश्वनन्दी को इस घटना का तत्काल पता लग जाने से वह वरुद्ध होकर वापस विशाखनन्द को मारने को उद्यत हुआ। तब विशाखनन्दी वैधे के वृक्ष पर चढ़ गया, इसने वैधे के वृक्ष को उखाड़ दिया। तब वह भागा और पत्थर के खम्भे के पीछे हो गया, यह विश्वनन्दी पत्थर के खम्भे को उखाड़कर उससे उसे मारने को दौड़ा। विशाखनन्दी वहां से डर कर भागा तब युवराज के हृदय में सौहार्द और करुणा जाग्रत हो गई। उसने उसी समय उसे अभयदान देकर बगीचा भी दे दिया और स्वयं 'संभूत' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली, तब विशाखभूति ने भी पापों का पश्चाताप कर दीक्षा ले ली। किसी दिन मुनि विश्वनन्दी अत्यन्त कृश अत्यन्त शरीरी मथुरा में आहार के लिये आये, उस समय यह विशाखनन्दि वेश्या के महल की छत से मुनि को देख रहा था। मुनि को गाय ने धक्के से गिरा दिया यह देख विशाखनन्दि बोला 'तुम्हारा पत्थर का खम्भा तोड़ने वाला पराक्रम कहाँ गया? मुनि ने यह दुर्वचन सुने उन्हें क्रोध आ गया अन्त में निदान सहित संन्यास से मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये, वहीं पर चाचा विशाखभूति भी देव हो गये, वहीं पर चाचा विशालभूति भी देव हो गये। दोनों की आयु सोलह सागर प्रमाण थी।

"अर्धचक्री त्रिपृष्ठकुमार"

सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से 'विशाखभूति का जीव' विजय नाम का पुत्र हुआ और महाराज की दूसरी रानी मृगावती से 'विश्वनन्दी का जीव' त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। विजय बलभद्रपद के धारक हुए और ये त्रिपृष्ठ अर्धचक्री पद के धारक हुए। उधर विशाख नन्दि का जीव चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हुआ कुछ पुण्य से विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलांजना रानी से 'अश्वग्रीव' पुत्र हुआ। यह प्रतिनारायण हुआ था। कालांतर में युद्ध में अश्वग्रीव के चक्ररत्न से ही अश्वग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति राजा त्रिपृष्ठ ने अपने भाई विजय के साथ बहुत काल तक राज्य लक्ष्मी का उपभोग किया, अन्त में भोगलिप्सा में मरकर सप्तम नरक में चला गया क्योंकि सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतों से रहित राज्य वैभव नरक का ही कारण है। नरक में इस मरीचि कुमार के जीव ने क्या—क्या कष्ट सहे हैं उनको असंख्य जिह्वाओं से भी नहीं कहा जा सकता? करोंत से चीरना, वुँआ भी—पाक में पकाना, अग्नि में जलाना, तिल—तिल खंड करने आदि के अनेकों दुःख भोगे भी आयु हुए बिना मर नहीं सका। वहाँ पर तेंतीस सागरों की आयु भोगकर सिंह हुआ और गर्मी—सर्दी, भूख—प्यास आदि बाधाओं से दुःखी हुआ, वहाँ श्वर प्राणि हिंसा से मांसाहार करते हुए पुनः मरकर पहले नरक चला गया। वहाँ के दुःखों को भोगकर वहाँ से निकल कर पुनरपि इसी जम्बूद्वीप में सिंधूकूट की पूर्व दिशा में हिमवान् पर्वत के शिखर पर सुन्दर बालों से युक्त सिंह हुआ।

"पुण्यशाली मृगेन्द्र"

वह सिंह किसी समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितञ्जय' और 'अमितगुण' नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश मार्ग से उतर कर उस सिंह के पास पहुँचे और शिलातल पर बैठकर जोर-जोर से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे भव्य मृगराज! तू अर्धचक्री त्रिपृष्ठ के भव में पांचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन कर तृप्त नहीं हुआ तथा सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण तू नरक में चला गया, वहाँ अत्यन्त प्रचंड और लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था, इत्यादि दुःखों को भोगकर तू वहाँ से निकलकर सिंह हुआ पुनः सिंह होकर हिंसा में रत है। तू वृषभदेव के समय मरीचि के भव में तीर्थकर वृषभदेव के वचनों का अनादर कर त्रसस्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक भ्रमण करता रहा। अब इस भव से दशवें भव में तू अन्तिम तीर्थकर होगा। यह बस मैंने श्रीधर तीर्थकर से सुना है। इन सब बातों को सुनते ही सिंह को जातिस्मरण हो गया। संसार के भयंकर दुःखों की स्मृति से उसका शरीर कांपने लगा तथा आंखों से अश्रु गिरने लगे। बहुत देर तक अश्रु गिरते रहने से ऐसा मालूम होता था कि मानों हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने की इच्छा से मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा है। उसकी शांत भावना को देखकर मुनि ने उसे सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराये। सिंह ने मुनिराजकी भक्ति से बार-बार प्रदक्षिणाये दीं, बार-बार प्रणाम किया और तत्काल ही काललब्धि के आ जाने से तत्त्वश्रद्धानपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। सिंह का मांसाहार के सिवाय और कोई आहार नहीं अतः मांस का त्याग करने से उसने 'निराहार व्रत' ग्रहण किया था।

सम्यग्दर्शन — सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और तत्वों का श्रद्धान करना। अहिंसाणुव्रत — मनवचनकाय से किसी भी जीवा को नहीं मारना। सत्याणुव्रत — स्थूल झूठ नहीं बोलना। अचौर्याणुव्रत — बिना दी हुई पर की वस्तु नहीं लेना। ब्रह्मचर्याणुव्रत — अपनी स्त्री के सिवाय सबको माता, बहन समझना। परिग्रह परिमाणानुव्रत — धन—धान्य आदि

परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रमाण कर लेना। तिर्यचों के संयमासंयम के आगे व्रत नहीं हो सकते। इसीलिए वह देशव्रती कहलाया। वह सिंह सब कुछ त्याग कर शिलातल पर बैठकर चित्रलिखित (पत्थर की मूर्ति) के समान हो गया था। चारण मुनि उसे शिक्षा देकर बार—बार उसका स्पर्श करते हुए चले गये—महावीर चरित में लिखा है कि—‘यह मरा हुआ है ऐसा समझ मदनोन्मत्त हाथियों ने उसकी सटाओं को नष्ट कर दिया, डांस, मक्खी और मच्छरों ने मर्म स्थानों को काट डाला, लोमड़ी और शूरगाल मृतक समझकर उस सिंह को तीक्ष्ण नखों के द्वारा नोच—नोच कर खाने लगे तो भी उस सिं ने अपनी परम समाधि नहीं छोड़ी, क्षमा भाव से सब सहन करता रहा। पूर्वोक्त प्रकार से एक महीने तक निश्चल रहकर अनशन धारण कर पाप रहित हुआ प्राणों से शरीर को छोड़ा।’ इस प्रकार सन्यास विधि से मरा और शीघ्र ही सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया वहां दो सागर तक उत्तम सुख भोगे।

“पुनः मरीचि कुमार के जीव की जैनेश्वरी दीक्षा”

स्वर्ग से आकर, धातकीखंड द्वीप के पूर्व मेरु समबन्धी पूर्व विदेह के मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकपुरभ नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के ‘कनकोज्ज्वल’ नाम का पुत्र हुआ। किसी दिन प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनि से दयामय जैनधर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली। बहुत काल तक तपश्चरण करते हुए ‘कनकोज्ज्वल’ मुनिराज सन्यास विधि से मरकर सातवें स्वर्ग में देव हो गये वहां के भोगों को भोगकर समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और इसी अयोध्या के राजा वडकासेन की रानी शीलवती से ‘हरिषेण’ पुत्र हो गया। राज्य वैभव का अनुभव करके हरिषेण ने श्रुतसागर मुनी से दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये। वहां से चयकर धातकी खंड की पुंडरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र की रानी मनोरमा से ‘प्रियमित्र’ नाम का पुत्र हो गया। यह प्रियमित्र चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ, चक्ररत्न से छहखंड को जीतकर बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छयानवें हजार रानियों के वैभव का अनुभव करते हुए क्षेमकर जिनेन्द्र धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गया। यह प्रियमित्र मुनि आयु के अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्ग में ‘सूर्यप्रभ’ नाम के देव हुए। वहां पर अठारह सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदिवर्धन की वीरवती रानी से ‘नंद’ नाम का एक सज्जन पुत्र हुआ। यहां भी अभिलषित राज्य का उपभोग कर ‘प्रोष्ठिल’ नाम के श्रेष्ठ गुरु के पास दीक्षा ले ली और ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

“तीर्थंकर प्रकृति का बंध”

दिगम्बर मुनि पंचमहाव्रत, पंचसमिति, पंचेदिरंय निरोध, षट् आवश्यक किर्या, केशलोच, वस्त्रों का पूर्ण त्याग, स्नान का त्याग, पृथ्वी पर शयन, दंतधावन का त्याग, खड़े होकर भोजन और एक बार भोजन इस प्रकार अट्टाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह से रहित ज्ञान—ध्यान में रत रहते हैं। परीषह और उपसर्गों को शांति और क्षमाभाव से सहन करते हैं। उत्तम क्षमादि इस धर्मों का पालन करते हैं। नंद मुनिराज ने घोर तपश्चरण से अपनी आत्मा को निर्मल बना लिया एवं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतन करने लगे। सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने में समर्थ उन भावनाओं का संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार है—

“सोलह कारण भावना”

१. दर्शन विशुद्धि — पच्चीस मल दोषरहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।
२. विनय सम्पन्नता — देव शास्त्र गुरु तथा रत्नत्रय की विनय करना।
३. शीलव्रतों में अनतिचार — व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।
४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग — सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।
५. संवेग — धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।
६. शक्तितस्तप — अपनी शक्ति को न छिपा कर अन्तरंग बहिरंग तप करना।
७. शक्तितस्त्याग — अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि, अभय और शास्त्र दान देना।
८. साधु समाधि — साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीर मरण करना।
९. वैयावृत्यकरण — व्रती, त्यागी साधर्मि की सेवा करना, वैयावृत्ति करना।
१०. अरिहंत भक्ति — अरिहंत भगवान् की भक्ति करना।
११. आचार्य भक्ति — आचार्य की भक्ति करना।
१२. बहुश्रुत भक्ति — उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।
१३. प्रवचन भक्ति — जिनवाणी की भक्ति करना।
१४. आवश्यक अपरिहाणि — छह आवश्यक किर्याओं का सावधानी से पालन करना।

१५. मार्ग प्रभावना — जैन धर्म का प्रभाव फैलाना।

१६. प्रवचन वत्सलत्व — साधर्मिजनों में अगाध प्रेम करना।

इन सोलह भावनाओं में दर्शनाविशुद्धि भावना का होना बहुत जरूरी है फिर उसके साथ दो तीन आदि कितनी भी भावनायें हों या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। नन्द मुनिराज ने इन भावनाओं से तीन लोक में आश्चर्य को उत्पन्न कराने वाली 'तीर्थंकर' प्रकृति का बंध कर लिया। आयु के अंत में आराधना से मरकर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हो गये। पाठक वृंद! देखिए! पुरुषा भील मद्य—मांस—मधु के त्याग से सौधर्म स्वर्ग के सुख का अनुभव कर चक्रवर्ती का पुत्र हुआ। पुनः मिथ्यात्व और मानकषाय से सहित था फिर भी अल्प आरम्भ परिग्रह रखने से और मंद कषायों के होने से तथा कुतपश्चरण के प्रभाव से देव हो गया। पांच बार पारिवराजक बना व छह बार देव पद पाया। किन्तु आगे मिथ्यात्व के निमित्त से तरस—स्थावर और निगोद रूप घोर कुयोनिओं में असंख्यात वर्ष पर्यंत धूमता रहा। कदाचित् विश्वनंदी मुनि भी हुआ तो निदान से दूषित होकर अर्धचक्री पद का अनुभव करके भी नरकों के महान् दुःख भोगे। जब सिंह की पर्याय में सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लिया अणुवर्त के प्रभाव से और सल्लेखना के माहात्म्य से उत्तम देव हुआ। अब यी सम्यक्त्व के निमित्त से उत्तम—उत्तम देवसुख और राज्यसुखों का अनुभव करता रहा। देखिये! सिंह के जीव ने आगे चलकर चार बार सम्यक्त्व सहित मुनिवर्त धारण किया तथा 'संसारी जीवों को दुःख से निकालकर मैं उत्तम सुख में पहुँचा दूँ, इस प्रकार उत्कृष्ट भावनारूप अपायविचय से 'नन्दमुनिराज' ने असंख्य प्राणियों पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी तीर्थंकर प्रकृति बांध ली।

"वीरप्रभु का गर्भ महोत्सव"

पुष्पोत्तर विमान के इन्द्र की आयु जब छह मास शेष रही तब इसी भरतक्षेत्र के 'विदेह' नामक देश सम्बन्धी कुंडलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के आंगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ रत्नों की धारा बरसने लगी जब पंचमकाल प्रारम्भ होने के पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहे थे तब आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में राजा सिद्धार्थ की प्रसन्न नवदना रानी प्रियकारिणी (तिरशला) सात खंड वाले राजमहल के भीतर रत्नमय दीपकों से प्रकाशित 'नद्यावर्त' नामक राजभवन में हंस तूलिका आदि से सुशोभित रत्नों के पलंग पर सो रही थीं, रात्रि के पिछले पहर में कुछ खुली सी नींद में उन्होंने उत्तम—उत्तम सोलह स्वप्न देखे। ऐरावत हाथी सुन्दर बैल, सिंह, हाथियों द्वारा स्वर्णकलश, स अभिषिक्त होती हुई लक्ष्मी, दो पुष्प माला, पूर्णचन्द्र उदित होता हुआ सूर्य, दो स्वर्ण कलश, करीड़ासक्त दो मछलियाँ, सुन्दर सरोवर, समुद्र, सिंहासन, स्वर्ग विमान, नागेन्द्र भवन, रत्नराशि और धूम रहित अग्नि ये सोलह स्वप्न हैं बाद में मुख में प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। अनन्तर प्रातःमंगल वाद्य महोत्सवों से उठकर आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो महाराज सिद्धार्थ के समीप गईं, वहाँ नमस्कार कर अर्धासन पर बैठकर कर्म से स्वप्नों को सुनाया। राजा सिद्धार्थ ने स्वप्न का फल पृथक्—पृथक् स्पष्ट करते हुए बतलाया कि तीन लोक के नाथ तुम्हारे गर्भ में आ गये हैं। अनन्तर सौधर्म इन्द्र सहित सब देवों ने आकर बड़े वैभव के साथ राजा सिद्धार्थ और रानी तिरशला का गर्भ कल्याणक सम्बन्धी अभिषेक किया तथा देव और देवियों को यथायोग्य कार्यों में नियुक्त कर दिया और स्वस्थान को चले गये। श्री, ह्री आदि देवियाँ माता की विशेष भक्ति सेवा करकने में तत्पर थीं और अनेकों तत्त्वचर्चाओं से, गूढ़ प्रश्नों से मनोरंजन किया करती थीं।

"वीर प्रभु का जन्माभिषेक महोत्सव"

नाव माह पूर्ण हो जाने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, अर्यमा नाम के शुभ योग में माता तिरशला ने पूर्व दिशा के सदृश अच्युतेन्द्र जीव को बालसूर्य रूप में जन्म दिया। उस समय देवों के यहां बिना बजाये बाजे बजने लगे, आसन वंङ्ग पित हो गये और कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे, सर्वत्र विश्व में आनन्द की एक लहर दौड़ गई। सौधर्म इन्द्र एक लाख योजन विस्तृत ऐरावत हाथी को सजाकर उसके दाँतों के सरोवरों के कमल पत्रों पर अप्सराओं को नृत्य कराते हुए असंख्य देवों के साथ आये और नगरी की तीन प्रदक्षिणायें दीं। 'इन्द्राणी ने तत्काल प्रसूतिग्रह में जाकर जिनबालक का दर्शन किया बार—बार प्रभु को प्रणाम कर तीन लोक के नाथ की जननी (माता) की स्तुति करती हुई, माता को निद्रित कर उसके पास मायामयी बालक को सुलाकर जिनबालक सूर्य को स्वयं गोद में लेकर चल पड़ी और बाहर आकर बड़ी प्रसन्नता से इन्द्र को सौंप दिया। इन्द्र ने जिनबालक को ऐरावत हाथी पर विराजमान किया और देवों से घिरा हुआ क्षणमात्र में सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर जिनबालक को पांडुक शिला पर स्थित विराजमान किया और क्षीरसागर के जल से भरे हुए १००८ कलशों से अभिषेक किया, अनेकों स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति की। अधिक कहने से क्या ? इन्द्र ने उन्हें उत्तमोत्तम आभूषणों से विभूषित कर उनके 'वीर' और 'वर्धमान' ऐसे दो नाम रखे। अनन्तर वापस लाकर माता की गोद विराजमान किया तथा बड़े उत्सव से आनन्द नामक नाटक करके प्रभु को नमस्कार कर स्वस्थान को चले गये। श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर वीरप्रभु उत्पन्न हुए थे उनकी आयु भी इसी में शामिल है कुछ कम बहत्तर वर्ष की प्रभु की आयु थी, वे सात हाथ ऊंचे थे। श्री वत्स आदि एक हजार आठ उत्तम लक्षणों से विभूषित थे, इनके शरीर में पसीना, मलमूत्र आदि नहीं था। जन्म से ही दश अतिशय भगवान् के प्रकट हुए थे।

“बाल्यकाल की विशेषतायें”

एक बार ‘संजय’ और ‘विजय’ नामक दो चारण मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह हुआ, भगवान् के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और प्रभु के दर्शन मात्र से ही उनका संदेह दूर हो गया। इसलिए उन्होंने बड़ी भक्ति से बालक का ‘सन्मति’ यह नाम रखा। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर प्रतिदिन भगवान् के समय, आयु और इच्छा के अनुसार स्वर्ग से भोगोपयोग वस्तुओं को लाया करता था। अर्थात् भगवान् के भोजन, आभूषण आदि स्वर्ग से ही आते थे। किसी समय स्वर्ग में वर्धमान के गुणों की चर्चा इन्द्र की सभा में सुनकर एक ‘संगम’ नाम का देव परीक्षा के लिए आया। भगवान् अनेक राजकुमारों के साथ एक वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ा में तत्पर थे। वह देव बड़े विकराल सर्प का रूप लेकर वृक्ष की जड़ से स्वंध तक लिपट गया। सब बालक भय से कंपित हो डालियों से कूदकर भागने लगे। कुमार महावीर ने निर्भय हो उस समय सर्प पर चढ़कर इस प्रकार क्रीड़ा की जैसे माता के पलंग पर किया करते थे। कुमार की क्रीड़ा से हर्षित हो देव ने भगवान् की स्तुति कर ‘महावीर’ यह सार्थक नाम रक्खा। यौवन अवस्था में प्रवेश करने पर माता—पिता ने भगवान् महावीर के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु भगवान् ने उसे अस्वीकार कर दिया और बाल ब्रह्मचारी रहे। इस प्रकार तीन वर्षों का भगवान् का कुमार काल व्यतीत हो गया।

“वीरप्रभु का दीक्षा महोत्सव”

किसी दिन भगवान् को स्वयं ही आत्मज्ञान हो गया। उसी समय लौकांतिक देवों ने आकर भगवान् की स्तुति की समस्त देवों ने आकर दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाया। भगवान् बंधुजनों से विदा लेकर ‘चन्द्रप्रभा’ नाम की पालकी पर सवार हुए। उस समय पालकी को सर्वप्रथम भूमिगोचरी राजाओं ने फिर विद्याधर राजाओं ने, फिर इन्द्रो ने उठाया। ‘षण्ड’ नाम के वन में—ज्ञातवन में ले गये। वहाँ भगवान् रत्नमयी शिला पर उत्तर की ओर मुँह कर बेला का नियम (दो दिन का उपवास) लेकर विराजमान हो गये। मगसिर वदी दशमी के दिन भगवान् ने वस्त्र, आभरण, माला आदि उतार कर पेंक दिये और शरीर से निर्मम होकर अपने केशों को उखाड़ पेंक दिये। इन्द्र ने सब केश हाथ में लेकर मणिमयी पिटारे में रखकर उनकी पूजा की एवं उन्हें उत्सव पूर्वक क्षीर सागर में विसर्जित किया। भगवान् निग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये तत्काल ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। मति श्रुत अवधि ये तीन ज्ञान तो तीर्थंकरों को जन्म से ही रहते हैं और दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो जाता है। पारणा के दिन भगवान् कूल ग्राम में आये वहाँ के राज ‘कूल’ ने भक्ति से पड़गाहन कर नवधा भक्ति से भगवान् को खीर का आहार दिया, फलस्वरूप उनके घर पर पंचाशचर्यों की वर्षा हुई। भगवान् मौन अवस्था में एकांत स्थानों, निर्जन वनों में तपश्चरण करने लगे।

“भगवान् द्वारा उपसर्गविजय”

किसी दिन धीर वीर भगवान् उज्जयिनी के अतिमुक्तक नामक श्मशान में प्रतिमोपयोग से विराजमान थे। उन्हें देखकर कापालिक ने अपनी दुष्टता से उनके धैर्य की परीक्षा के लिए रातिर में बड़े—बड़े बेतालों का रूप बनाकर उपसर्ग किया, अट्टाहस करते हुए, विकराल मुँह फाड़े हुए वे बेताल डरा रहे थे। इसके सिवाय सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु के साथ भीलों की सेना बनाकर उपसर्ग किया। पाप का ही अर्जन करने में निपुण वह रूद्र अपनी विद्या के प्रभाव से भयंकर उपसर्गों को करते हुए भी प्रभु को ध्यान से चलायमान नहीं कर सका। अन्त में उसने ‘महति’ और ‘महावीर’ नाम रख कर अनेकों प्रकास से स्तुति की, अपनी भार्या के साथ नृत्य किया और सब मत्सर भाव छोड़कर वहाँ से चला गया।

“चन्दना के बन्धन टूट गये”

राजा चेटक की चन्दना पुत्री (भगवान् की छोटी मौसी) को वन क्रीड़ा में आसक्त देख, किसी विद्याधर ने उसे हरण कर लिया और पत्नी के डर से महाटवी में छोड़ दिया। वहाँ के भील ने उसे ले जाकर वृषभदत्त सेठ को दे दी, सेठ की पत्नी—सुभद्रा, सेठ के प्रति संदिग्ध दृष्टि होने से चन्दना को खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिश्रित कोदों का भात दिया करती थी और क्रोध वश उसे सांकल से बांधे रखती थी। किसी दिन उस कोशाम्बी नगरी में आहार के लिए भगवान् महावीर स्वामी आ गये। उन्हें देखकर चन्दना उनके सामने जाने लगी। उसी समय उसके सांकल के सब बन्धन टूट गये, उसके शिर पर केश हो गये वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये। शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा स्वर्ण पात्र और कोदों का भात चावल बन गया। उस चन्दना ने भगवान् को पड़गाह कर नवधा भक्ति से आहारदान दिया। उसके यहाँ पंचाशचर्यों की वर्षा हुई और बंधुओं के साथ उसका समागम हो गया।

“भगवान् का केवलज्ञान महोत्सव”

जगद्धु भगवान् के छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत हो गये। किसी दिन भगवान्, जुंभिक ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे 'मनोहर' नाम के वन में रत्नमयी एक बड़ी शिला पर सालि वृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर प्रतिमायोग से विराजमान हुए। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन अपराह्नकाल में, परिणामों की विशुद्धि से वे क्षपक श्रेणी श्पर आरूढ़ हुए। उसी समय घातिया कर्मों का नाश कर अनंत चतुष्टय से सहित, चौतीस अतिशयों से सुशोभित केवल 'परमात्मा' हो गये। पृथ्वी से पाँच हजार धनुष (बीस हजार हाथ) ऊपर आकाश में सुशोभित होने लगे। सौधर्म इन्द्र ने आकर देवों के साथ समवसरण की रचना की और केवलज्ञान महोत्सव मनाया समवसरण में बारह सभा में बैठे हुए असंख्य भव्यजीव भगवान् की दिव्यध्वनि रूपी धर्माभूत का पान करने के लिए उत्सुक थे। फिर भी भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। इसका कारण 'गणधर का न होना' समझकर इन्द्र के अधिज्ञान से विचार किया एवं वेदवेदांग पारंगत पाँच सौ शिष्यों के गुरु गौतम गोत्रिय इन्द्रभूति नाम के ब्राह्मण के पास इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप लेकर लाठी टेकते हुए पहुँचा अनेकों वार्तालाप के बाद इन्द्र ने एक श्लोक का अर्थ पूछा तब ब्राह्मण ने सोचा इसके गुरु के पास ही चलकर वाद-वाववाद करना चाहिये। वहाँ समवसरण में पहुँचकर मानस्तंभ देखते ही गौतम का मानगलित हो गया। श्री गौतम चरित में कहा है कि 'वह मन में विचारने लगा कि जिस गुरु की पृथ्वी भर में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली इतनी विभूति है वह क्या किसी से जीता जा सकता ? कभी नहीं, तदनन्तर भगवान् वीरनाथ के दर्शन कर वह गौतम अनेकों स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति करने लगा। इसके बाद ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए ये इन्द्रभूति गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों और भाईयो के साथ श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार कर मुनि बन गये। परिणाम की विशेष विशुद्धि से तत्काल ही इन्द्रभूति को मनःपर्ययज्ञान और सात ऋद्ध्यां प्रगट हो गई श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन पूर्वान्ह में भगवान् की दिव्य ध्वनि खिरी, उसी दिन अपराह्नकाल में ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों का स्पष्ट बोध प्राप्त करके इन्द्रभूति गौतम ने रात्रि के पूर्व भाग में अंगों की और पश्चिम भाग में पूर्व ग्रन्थों की रचना की। उसी समय गौतम ग्रन्थकर्ता कहलाये तथा ये महावीर स्वामी के प्रथम गणधर हुए हैं। इनके बाद वायुभूति, अग्निभूति, आदि दश गणधर और हुए।

भगवान् के समवसरण में ग्यारह गणधर, चौदह हजार मुनि, चंदना को प्रमुख कर छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे। इन बारह गणों से वेष्टित भगवान् ने सिंहासन के मध्य में स्थित हो अर्धमागधी भाषा के द्वारा छह द्रव्य, सात तत्त्व, संसार और मोक्ष के कारण आदि का दिव्य उपदेश दिया। भगवान् का उपदेश सात सौ अठारह भाषाओं में परिणत हो जाता था। इनके अतिरिक्त भी सभी भव्य अपनी —अपनी भाषा में समझ लेते थे। इसलिए संख्यात भाषा भी था। भगवान् की प्रथम धर्मदेशना राजगृह नगर के विपुलाचल पर्वत पर हुई है। महाराज श्रेणिक भगवान् के समवसरण के मुख्य श्रोता थे।

"भगवान् का मोक्ष गमन"

अन्त में भगवान् पावापुर नगर में पहुँचे। वहाँ के 'मनोहर' नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान हो गये। वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहे और कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के अन्तिम समय स्वाति नक्षत्र में तीनों योगों का निरोध कर अघातिया कर्मों का नाश करके शरीर रहित केवल गुण रूप होकर मोक्ष पर प्राप्त कर लिया उसी समय भगवान् लोक के अग्रभाग पर जाकर विराजमान कृतकृत्य, सिद्ध, नित्य, निरंजन, भगवान् बन गये। अब वे वापस कभी भी अनन्त काल तक संसार में नहीं आयेंगे। उनके पुरुषार्थ की अन्तिम (चरम) सीमा हो चुकी है। अनन्तर इंद्रादि सब देव आये और अग्नि की शिखा पर भगवान् का शरीर रखकर संस्कार किया। स्वर्ग से लाये गए गंध, माला आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से विधिवत् भगवान् की पूजा की, अनेक स्तुतियाँ कीं और मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। जिस दिन भगवान् मोक्ष गये उसी दिन स्वामी को केवलज्ञान प्रकट हो गया। उस समय सुर द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदोप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगर का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। उस समय से लेकर भगवान् के निर्वाण कल्याणक को भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रतिवर्ष आदर पूर्वक प्रसिद्ध 'दीप मालिका' के द्वारा भगवान् महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् दीपावली का उत्सव मनाने लगे।।"

"उपसंहार"

भगवान् महावीर ने असंख्य भव्यजीवों को अपने समान 'महावीर' बनने का उपदेश दिया। इनके आदर्श जीवन से ही हम अपने आप अपना उत्थान करना सीख सकते हैं। हम चाहें तो मिथ्यात्व का सेवन करते हुए अनंतों काल निगोद अवस्था में और स्थावर पर्याय में बिता दें। हम चाहें तो पंच-पाप, विषय और कषायों के आश्रित होकर असंख्यों वर्ष नरक तिर्यचों में बिता दें। हम चाहें तो तो सम्यक्त्व से, पंच

अणुव्रत, महाव्रत से अपने आपको स्वर्ग मोक्ष का पात्र बना लें। श्री सकलकीर्ति आचार्य कहते हैं कि 'वस्तुतः आग में कूद पड़ना, हलाहल विषय खा लेना, समुद्र में डूब जाना उत्तम है किन्तु मिथ्यात्व सहित जीवित रहना कदाचित् किन्ही अंशों में ठीक भी है, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवों के साथ संबंध स्थापित करना तो बड़ा ही भयानक है। कारण हिंसक जीव तो एक जन्म में ही दुःख देते हैं परन्तु मिथ्यात्व का प्रभाव तो जन्म-जन्मांतर तक करोड़ों जन्मों तक दुःख देता है बुद्धिमान पुरुषों का कथन है कि मिथ्यात्व और हिंसादि पापों की यदि तुलना की जावे तो मेरु और सरसों के समान अन्तर मालूम होगा। अतएव यदि कहीं प्राण जाने का भय हो तो भी हे भव्यजीवों! मिथ्यात्व का सेवन नहीं करना चाहिये। प्रत्यक्ष है कि मरीचि के जीव को मिथ्यात्व के प्रभाववश केवल क्षणिक सुख की आशा से कठिन से कठिन दुःख भोगने पड़े। यदि आप लोग शाश्वत सुख की आकांक्षा रखते हो तो मिथ्यात्व का परित्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण करो तथा अणुव्रत, महाव्रत ग्रहण करने में प्रमाद मत करो।' पुरुरवा से लेकर भगवान महावीर के ३४ भव

१. पुरुरवा भील १६. स्थावर-ब्राह्मण २. प्रथम स्वर्ग में देव १७. चतुर्थ स्वर्ग में देव ३. भरत पुत्र-मरीचि १८. विश्वनंदि ४. ब्रह्म स्वर्ग में देव १९. महाशुक्र नामक दशवें स्वर्ग में देव ५. जटिल ब्राह्मण २०. त्रिपृष्ठ अर्धचक्री ६. सौधर्म स्वर्ग में देव २१. सप्तम नरक में ७. पुष्यमित्त्र-ब्राह्मण ३३. सिंह ८. सौधर्म स्वर्ग में देव २४. सिंह (यहाँ से उत्थान प्रारम्भ) ९. अग्नि सम-ब्राह्मण २५. सौधर्मस्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव १०. सनत्कुमार स्वर्ग में देव २६. कनकोज्ज्वल विद्याधर ११. अग्निमित्त्र ब्राह्मण २७. सातवें स्वर्ग में देव १३. भारद्वाज २८. हरिषेण राजा १३. माहेन्द्र स्वर्ग में देव २९. महाशुक्र स्वर्ग में देव १५. मनुष्य ३०. प्रियमित्त्र नामक चक्रवर्ती (इसके बाद एवेन्द्रिय आदि ३१. सहास्रार स्वर्ग में सूर्यप्रभदेव असंख्यात भव) ३२. नंदन नामक राजा ३३. अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र ३४. तीर्थकर-वर्धमान-महावीर इस प्रकार पुरुरवा भील से लेकर महावीर पर्यंत ३४ भवों को दिखाया है। इनके मध्य असंख्यातों वर्षों तक नरको में, त्रस-स्थावर योनियों में तथा इतर निगोद में जो भव ग्रहण किये हैं उनकी गिनती नहीं हो सकती है।